International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.4, April 2013
ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

जनजातीय शिक्षा, लोक साहित्य एवं साहित्यकार

संतोष डेहरिया

सारांश

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में सद्गुणों का विकास करके उसे समाज के लिए उपयोगी बनाना है। शिक्षा का उद्देश्य मात्र जीवकोपार्जन नहीं है, बल्कि माननीय मूल्यों को जानना है। यदि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित जागरूक होगा तो उनमें क्रियाशीलता बढ़ेगी ।'संस्कार' शब्द को अगर लें तो यह अपने व्यक्तित्व निर्माण की संपूर्ण प्रक्रिया है । जैसे आप किस परिवार में पैदा होते हैं, माता–पिता क्या संस्कार आपके अंदर डालते हैं या फिर आपके आगे की जो शिक्षा है, इसी प्रक्रिया के दरम्यान आपके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसी को हम 'सोशियोलाइजेशन' कहते हैं। आदमी पैदा होता है, व्यक्ति के रूप में लेकिन बाद में उसका 'सोशियोलाइजेशन' होता है। निश्चित रूप से किसी भी साहित्य के निर्माण के लिए यह आधारभूत तत्व होता है।

प्रस्तावना–

आदिवासियों का मतलब आप समझेंगे मूल निवासी । मतलब कहीं भी चाहे हिन्दुस्तान हो या अमेरिका, वहाँ के मूल निवासी और आदिम मानवता जो वहाँ के धरातल पर रह रही है, उस देश, उस जमीन पर रह रही है और बाहर से जो समूह आए चाहे वह कबीलों के रुप में आते हों, शांतिपूर्ण तरीकों से या युद्ध करके अपना विस्तार कर रहे हैं, अपने सेटलमेंट का, या आक्रांता बनकर युद्ध करेंगे । जो पहले से रह रहा है, उसकी जगह–बाहर वाला आयेगा तो निश्चित ही शांति भंग होगी, जिससे संघर्ष अनिवार्य है। आदिवासियों के साथ यही हुआ है। वे जहाँ रह रहे थे, वहाँ से उन्हें बार–बार हटाया जाता रहा । जो बाहर से आया उसने उन्हे वहाँ से हटाया । पहले वे मैदानी इलाके में थे तो उन्हें जंगलों में खदेड़ा उसे पहाड़ों पर चढ़ा दिया और अब इस कालखंड में 21 वीं शताब्दी में उन्हें उन जगहों से भी हटाया जा रहा है। एक अनुमान के मुताबिक कई आदिवासियों की जनसंख्या में कमी आई है। जो जनजातातियाँ सूचीबद्ध हैं, उनकी जनसंख्या करीब 8 करोड़ है। उनमें 2 करोड़ आदिवासी विस्थापन के कगार पर हैं या विस्थापित किए जा रहे हैं। बड़े बड़े बाँध बन रहे हैं– विकास की और योजनाएँ हैं या पुलिस एवं फौज की फायरिंग रेंज है या कोई हाइबे निकल रहा है या कहीं रेलवे लाइन उन्हें हटा रही है। इन सब के कारण आदिवासी ही तबाह हो रहे हैं । एक तरफ उद्योग लगाए जा रहे हैं, दूसरी तरफ विकास के नाम पर आदिवासी का विस्थापन हो रहा है। यह इसका त्रासद पक्ष है।[1] सामाजिक संस्थाओं की यह जिम्मेदारी बनती है कि आदिवासियों में शिक्षा के प्रति जारूकता फैलाएँ । उद्योगों के प्रबंन्धन क्षेत्र में जब तक आदिवासियों का प्रतिनिधित्व नहीं होगा, तब तक शोशण की प्रक्रिया नहीं रूकेगी, और प्रति निधि भी ऐसा होना चाहिए जो आदिवासी की भावना को समझे । साथ ही सरकार की भी यह जिम्मेदारी बनती है कि वह शोषित पीड़ित आदिवासी की समस्याओं का निदान करे । जब आदिवासियों में आत्म विश्वास की भावना

Please cite this Article as : संतोष डेहरिया, जनजातीय शिक्षा, लोक साहित्य एवं साहित्यकार **:International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 1, Issue.4, April 2013**

जग जाएगी तो फिर उसे कहीं भी दिक्कत नहीं होगी और यह भावना शिक्षा के माध्यम से ही फैलाई जा सकती है। सरकारी स्कूलों में शिक्षक निजी ट्यूशन के माध्यम से ज्यादा पढ़ाते हैं और स्कूल में कम । इससे गरीब छात्र जो कि आदिवासी होते हैं, शिक्षा की रफ्तार नहीं पकड़ पाते । आदिवासी पर लिखा हुआ साहित्य केवल इसलिए आदिवासी साहित्य नहीं कहा जाता कि उसे लिखने वाला कोई आदिवासी है या उस साहित्य में आदिवासी पात्र या नायक नायिकाएँ हैं। आदिवासी साहित्य में प्रकृति और प्रकृति से लगाव, आदिवासी संस्कृति, जीवन शैली, उनकी अपनी समस्याएँ जल, जंगल जमीन, सामूहिकता, बराबरी, आजादी और भाईचारा तथा लोकतंत्र वादी सोच का होना जरूरी है। उनकी अपनी भाषा या अन्य किसी भाषा में रचित साहित्य में बदलाव की उनकी अपनी रूपरेखा, आजादी की भावना, विकास की अपनी परिभाशा, अपना इतिहास या उसकी व्याख्या होना जरूरी है और जरूरी है बहुत हद तक उनका वैज्ञानिक व तर्कशील होना । बहुत बड़ी बात तो यह है कि वह शोषण एवं अन्याय का विरोधी होना चाहिए । तभी वह आदिवासी साहित्य की परिभाषा में आ सकता है। इस समय भुजंग मेश्राम, वाहरू सोनवणे, ऊशा अतराम (गोंड़), नजूबाई गावित (महाराष्ट्र), निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, सरिता बड़ाइक, महादेव टोप्पो, देवगम, रोज, केरकेट्टा, कृष्णचन्द टुडू (झारखण्ड), रूपचन्द हाँसदा (बंगाल), दयामनी बेसरा, चेतन माझी और सुकन्या (उड़ीसा), एल लियाना ख्यांग्टे, येशे दोरजी एवं ममांग्देई (अरूणाचल प्रदेश), किंगफाम सिंह, डेजमन्द खरिफल यांग , विजोया सावियान और मिनीमोल लालू (मेघालय), योमे, नेचुरियाजो (नागालैण्ड़), मकरम माझी और मोती लाल (मध्यप्रदेश), हरिराम मीणा, रमेशचन्द्र मीणा, शंकरलाल मीणा, मोहन पारगी, रमेश वढेरा, गोगराय शेखावत (राजस्थान), भगवान दास पटेल और राठवा (गुजरात) बराबर आदिवासियों पर कलम चला रहे हैं।[2]

आदिवासी साहित्य में झाडू लगाने वाला, मेहनतकश मजदूर, किसान ही केन्द्र में होता है और यही मुख्यधारा है, जिसमें मानवतावाद है। इनके केन्द्र में ई वर नहीं, मनुष्य है और मनुष्य, मनुष्य की नजर में समान है। ईश्वर की नजर में हर मनुष्य समान होता है की अवधारणा का इनके लिए न तो कोई अर्थ है, न महत्व । जिस व्यवस्था में मनुष्य की नजर में मनुष्य समान न हो, वह व्यवस्था मानव वादी मूल्य पर खरी नहीं उतर सकती । यही आदिवासी मान्यता है। तथा कथित मुख्यधारा को इनसे सीखने की जरूरत है। सभ्यतावादी सोच ने तो मनुष्य को बर्बर, हिंसक और उपभोक्तावादी बनाया है, जिसमें वैमनस्य और गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा है। वे वर्चस्ववादी हैं, जबकि आदिवासी नैतिकता से युक्त मानववादी और समतावादी है। भले ही अब वे इस विध्वंसकारी सोच से प्रभावित हो रहे हैं।[3]

सरकार द्वारा देश के जनजातीय भाषाई समूह के लिए कोई अलग शिक्षानीति दृष्टिगोचर नहीं होती । केवल कुछ प्रोत्साहन अनुदान दिए जाते हैं और सरकार द्वारा जनजातीय लोगों में इस प्रसंग में सुधार के लिए समय–समय पर अतिरिक्त योजना–कार्य किए जाते हैं। यदि हम जनजातीय समूह के भाषाई पक्ष को जोड़कर शिक्षा नीति पर विचार करने का प्रयास करते हैं, तो हमें उस दिशा में सावधानी से कदम उठाना होगा, ताकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नाम पर उनकी मूल भाषाएँ हाशिये पर न चली जाएँ। भारत में पाँच सौ से अधिक जनजातियाँ रहती हैं और पूर्वोत्तर क्षेत्र को छोड़कर विभिन्न राज्यों में भी 75 आदिवासी समूह निवास करते हैं। लेकिन कुछ प्रमुख जनजातियों को छोड़कर अधिकांश अपनी भाषा खो चुकी हैं या वे बहुसंख्यक समुदाय में घुलमिल गई हैं।

मातृभाषा में शिक्षा के मुद्दे पर नोबेल पुरस्कार विजेता एकमात्र भारतीय साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मातृभूमि को माता के दूध के रूप में वर्णित किया है, अर्थात् जिस प्रकार बच्चों के स्वास्थ्य के लिए

माता द्वारा पिलाया गया दूध सर्वोत्तम है, उसी प्रकार अन्य भाषा की तुलना में मातृभाशा में शिक्षा देना सर्वोत्तम है।

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि कम से कम समय में साक्षर होने के लिए और ज्ञानार्जन का प्रारंभिक द्वार खोलने के लिए मातृभाषा का उपयोग सबसे कारकर साबित होता है। सभी लोग अपने घरों के सारे क्रिया कलाप अपनी मातृभाषा में ही संपन्न करते हैं। बच्चे भी घर में मातृभाषा बोलते हैं, लेकिन जब वे स्कूल जाते हैं, तो उन्हें हिन्दी माध्यम में पढ़ना पड़ता है, जिस कारण वे शिक्षक की बात नहीं समझ पाते । हिन्दी में वे शिक्षक से बात भी नहीं कर सकते। धीरे –धीरे ये बच्चे शिक्षक और स्कूल से दूर होते जाते हैं। नतीजतन 65 प्रतिशत बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। सरकार भी जानती है कि आदिवासी भाषाएँ सृष्टि की प्रारंभिक मूल भाषाएँ हैं, जिनका प्रयोग यदि बचपन में नहीं किया जाए, तो बाद में उन्हें सीख पाना असंभव हो जाता है। इस तरह जो बच्चे बचपन में ही मातृभाषा नहीं सीख पाते, उनके लिए भाषा की मृत्यु हो जाती है। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि 'अगर किसी जाति को समाप्त करना है तो उसकी भाषा को खत्म कर दो ।[4] आदिवासी क्षेत्रों में आज भी शिक्षा के प्रति रूचि पैदा करना नितांत आवश्यक है। आदिवासी माँ – बाप जागरूकता की कमी के कारण प्रायः अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते । फलतः सरकारी प्रयास के बावजूद लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती ।

अतः शिक्षा के प्रति रूचि पैदा करने के लिए स्थानीय समाज सेवी एवं बुद्धिजीवियों का सहयोग लेना चाहिए । जनजातीय क्षेत्रों में जनजातीय भाषा, संस्कृति, स्वभाव जानने वाले शिक्षकों को पदस्थापित करना चाहिए । अनायास शिक्षकों के स्थानांतरण पर रोक लगाने की भी आवश्यकता है। आज शिक्षानीति, शैक्षणिक वातावरण एवं शैक्षणिक परिवार में आमूल चूल परिवर्तन लाने के लिए छात्र, अभिभावक, शिक्षक, शिक्षा अधिकारी के बीच सामंजस्य स्थापित करना अत्यावश्यक है, सहयोग की भावना जागृत करना जरूरी है, ताकि बच्चों के जीवन को शैक्षणिक संस्कृति द्वारा संवारा जा सके ।

संदर्भ – ग्रंथ

01. आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार, संपादक–रमणिका गुप्ता, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2012, पृ. 72.
02. वही, पृष्ठ– 138.
03. वही, पृष्ठ – 141
04. आदिवासी भाषा और शिक्षा, संपादक रमणिका गुप्ता, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. –2012, पृष्ठ–97.